International Journal of Sociology and Political Science
www.sociologyjournal.in
Online ISSN: 2664-7745, Print ISSN: 2664-7737
Received: 12-04-2022, Accepted: 27-04-2022, Published: 13-05-2022
Volume 4, Issue 1, 2022, Page No. 37-39

सामाजिक न्याय की गतिशीलता में आरक्षण का योगदानः एक विवरणात्मक अध्ययन

सुभाष चन्द्र वर्मा
शोधार्थी, डॉ. बी आर अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, डा. अम्बेडकर नगर, महू, मध्यप्रदेश, भारत

सारांश
आधुनिक राज्यों के आधिपत्य में सभी मानव समाजों में रहते हैं। राज्यों में सभी नागरिकों को नागरिक अधिकार, मानवाधिकार, मौलिक अधिकार ये सभी सामूहिक रूप से मिले हुए हैं। जिससे व्यक्तियों को 'कानून के शासन' के आधार पर स्वतंत्रता एवं गरिमा की रक्षा हो सके। समान अवसर और संसाधनों के बटवारे में उचित प्रक्रिया का पालन हो। परिणामस्वरूप समाज में सामाजिक न्याय की प्रतिध्वनि न सिर्फ सुनाई दे बल्कि दिखाई भी दे। आरक्षण इसी सामाजिक न्याय की स्थापना व गतिषीलता में एक मजबूत स्तम्भ का कार्य करता है। शोध आलेख में गतिषीलता का तात्पर्य–योजनाओं व प्रावधानों में अन्तर्निहित बल से है। जिसके द्वारा कोई योजना व प्रावधान संबंधित समूहों पर अपना प्रभाव छोड़ सके। सामाजिक न्याय की संकल्पना में असमान परिस्थितियों के मुद्दें जैसे असमानता और वंचना को हल किये बिना कोई समाज न्यायपूर्ण नहीं हो सकता। यह नैतिक सहजबोध पर आधारित है। भारत में आभावों और असामानताओं जैसे मसलो से सर्वाधिक प्रभावित अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां है। इन्हें सामाजिक न्याय की क्यों जरूरत है, इस आलेख में प्रतिबिंबित किया गया है।

मूल शब्दः आरक्षण, सामाजिक न्याय, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति

प्रस्तावना
भारत विविधताओं से भरा देष है, जहां कई धर्म, जाति, नस्ल, रंग के लोग निवास करते हैं। जनमानस में कई भाषाओं को बोलते हुए, 'विविधता में एकता' का सूत्र पिरातें हैं।, लेकिन यहां सदियों से स्थापित जाति व्यवस्था के कारण इस एकता के सूत्र में समय समय पर दरारे पड़ती रहीं हैं। हमारे अपने हिन्दू समाज में 'जाति' एक बुनियादी विषेषता है''[1] वस्तुतः जाति एक अनूठी पहचान हैं। जाति व्यवस्था कुछ निर्षिचत नियमों और विष्वासों पर आधारित है। पदानुक्रम, निष्चित व्यवसाय, सगोत्रीय शादी विवाह के नियम जाति व्यवस्था की प्रमुख विषेषताए हैं। इस व्यवस्था में पहले से ही यह तय कर दिया जाता है कि विभिन्न जाति समूहों को एक–दूसरे से कितना अन्तराल बनाकर रखना है। भारत में विभिन्न जातियों के बीच शक्ति, सम्पत्ति और सामर्थ्य के हिसाब से स्पष्ट असमानता या भेदभाव है।''[2] यह कहा जा सकता है कि इक्कसवी सदी में षिक्षा व्यवसायों, उद्योगों के उदारीकरण के कारण तीवृ गति से जीवन में बदलाव हुआ है, लेकिन भेदभाव में कमी हुई है, यह कहना 'दिन में तारे' देखने जैसा ही है। यहाँ अब भी वर्ण–विभाजन का अस्तित्व कायम है। हमारे समाज में वर्ग–विभाजन की क्रमरेखा में हजारों जातियां पदसोपान में बिख़री हैं। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति इस क्रम में आखिरी छोर पर अवस्थित है।

इन्हें जाति की वजह से सदियों से अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। इन्हें परिणाम स्वरूप सामाजिक वस्तुओं के वितरण में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। लेकिन इसका भेदभाव ही लक्षण नहीं है। अन्याय का प्रश्न समाज में चालू दमन, शोषण, गाली–गलौज, दुराचार, शोषण, वातावरणीय अन्याय, प्राधान्य, नस्ल भेद इत्यादि रूपों में सामहित है। जाति के नाम पर होने वाले अन्यायों की उपमा कई समाजों में नस्ल के नाम पर होने वाले अन्यायों से की जा सकती है। आशय कि संयुक्त राज्य अमेरिका में अफ्रीकी अमेरिकी लोगों की स्थिति काफी हद तक भारत में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों के समान तो नहीं मध्य में कह सकते है। अभी जून 2020 मिनियोपोलिस शहर में जार्ज बर्ड नाम के एक अश्वेत शख्स की मौत पर वहां उपजा ''काले लोगों की जिंदगी सबब रखती है।'' (ब्लैक लाइव्स मैटर्स्) नामक अभियान सामाजिक अन्याय को प्रश्नांकित करता है। सामाजिक और आर्थिक न्याय सामाजिक कार्य पेशा के लिए एक आयोजित मूल्य है।[3]

सामाजिक न्याय की परिधि केवल समाज कार्य तक सीमित नहीं है बल्कि यह विभिन्न वृत्तिक संदर्भो में निहित जैसे युवा–कार्य, नीतिया, अयोग्यता–अध्ययन समाजिक न्याय के विचार दर्शन एवं राजनीति विज्ञान की परांपराएं। सामाजिक न्याय की अगुआई में कई मामले आये जैसे कि मजदूर अधिकार महिलाओं के अधिकार, अक्षम लोगों के अधिकार इत्यादि शामिल है। सामाजिक न्याय की किसी भी संकल्पना को इन आपत्तियों से मुह मोड़ना समाधान नहीं है।

1940 के दशक के दौरान अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की प्रस्थिति
मुसलमानों की ही तरह अछूत कही जाने वाली जातियों के लोग पूरे देश फैले हुये थे।[4] मद्रास, बाम्बे, सिंध, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, सेन्ट्रल प्रोविन्सेस, असम, बंगाल, युनाइटेड प्रोविन्सेस में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोग घनघोर गरीबी, कलंक एवं सवर्णों के हिंसा की फलक में अपनी जिंदगी गुजार रहे थे। वे गांवों में काम करते थे और सबसे दोयम दर्जे के व्यवसायों में लगाये गये थे। वे खेतों में मजदूरों के रूप में, घरों में निश्चित दूरी बनाकर नौकर के रूप में, जूता सिलने एवं मरे हुये पशुओ को उठाने एवं कूड़ा–कबाड़ बीनने, गंदगी साफ करने जैसे काम करके अपना जीवन यापन कर

रहे थे। सवर्णों की जालसाजी और शोषण के कवच में उनकी हालत ऐसी बना दी गई थी कि उनके दिन में निकलने व देखने भर से ही उनकी जातियों के लोगों को 'अपवित्रता' नामक रोग का भान हो जाता था। फलस्वरूप ऊंचे वर्ण के लोग गंगा जल का छिड़काव करते थे। अछूतों को जमीन और जल संसाधनों से वंचत कर दिया गया था। उनकी बस्तियां गावों के बाहर दूसरे छोर पर बसाई जाती थी।

डॉ. अम्बेडकर और सामाजिक न्याय

डॉ अम्बेडकर का संपूर्ण जीवन और संघर्ष तथा उनके द्वारा किये गये कार्यक्रमों व कार्यों सें सामाजिक न्याय का दर्शन जमीन पर रेखांकित है। बाम्बे विधान सभा परिषद में ''ग्राम पंचायत बिल'' पर 6 अक्टूबर 1932 को बोलते हुऐ डा. अम्बेडकर के वाक्यों में सामाजिक न्याय की चिंता झलकती है। अम्बेडकर के शब्दांश में ''दलित वर्ग प्रत्येक गांव में अल्पसंख्यक है, एक घृणास्पद अल्पसंख्यक है।''[5] उनका कहना है कि वयस्क मताधिकार दलितों के लिए पर्याप्त नहीं है। क्योंकि वयस्क मताधिकार किसी अल्पसंख्यक को बहुमत में नहीं बदल सकता।[6] डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि यदि ग्राम पंचायतों का अस्तित्व आता है तो वहां किसी भी कीमत पर अल्पसंख्यकों के लिए, दलितों के लिए, विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था होनी चाहिए और निश्चित रूप से दूसरे लोग खुद के लिए स्वयं आवाज उठायेगें। डॉ. अम्बेडकर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के वर्गों को सार्वजनिक लाभों में उनके अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न सहूलियतों की सिफारिश की थी। उन्हें दो 'कठिनाइयों की बातों' का डर था कि पहली रूढ़ीवादी समूहों द्वारा खुली हिंसा का डर वह इसलिए कि जब दलित वर्ग सदियों बाद अपने अधिकारों का प्रयोग व्यवहारिक स्तर पर करेगा तो रूढीवादी समूह अपने हितों और गरिमा के मान के लिए दलितों पर हमला किसी तरह का हमला करने से भी नहीं हिचकेगा। दूसरी कठिनाइयों का डर दलितों की खराब आर्थिक स्थिति से है। इन वर्गों में खराब आर्थिक स्थिति आज भी विद्यमान है। इनमें अधिकांशतया मजदूर के रूप में अपना जीवन गुजारते है और कुछ लोग रूढ़ीवादी समुदायों द्वारा दिये गये भोजन व अनाज पर जो कि उन्हें गांव में सेवा करने के एवज में प्राप्त होता है। डा. अम्बेडकर कई उदाहरणों का संदर्भ देते है। जहां पर दलित वर्गों के खिलाफ रूढ़ीवादी समूहों ने आर्थिक शक्ति का एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। दलित वर्गों ने जब अपने अधिकारों को अमल में लाने की कोशिश की तो उन्हें जमीन से बेदखल कर दिया गया। उन्हें रोजगार देना बंद कर दिया गया। गांव में सेवकों के रूप में मेहनताना देना बंद कर दिया गया। इस बहिष्करण की योजना अक्सर बड़े पैमाने पर अपनाई जाती है। जैसे आम रास्तों को उपयोग करने से रोकना, गांव के व्यापारियों द्वारा मूलभूत अवश्यकताओं की बिक्री पर रोक, सामूहिक कुओं से पानी भरने से रोक। कभी कभी छोटे–छोटे कारण भी बहिष्करण के कारण बने है, जैसे कि किसी दलित ने पवित्र धागा पहन लिया हो, जमीन का टुकड़ा खरीद लिया हो, अच्छे कपड़े व आभूषण पहन लिया हो, मूँछे बढ़ा ली हो, या शादी विवाह के अवसर पर दूल्हे को घोड़े पर बिठाकर सार्वजनिक गली से निकला हो। समकालीन भारत में रूढ़वादी समूहों द्वारा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर लगातर जानलेवा हमला करना जारी है। नजीर के तौर पर 17 जुलाई 2019 को उत्तर प्रदेश के सोनभद्र तहसील के उंभा गांव के दस आदिवासियों की रूढ़ीवादी सवर्ण समूहों द्वारा बंदूक की गोली दागकर हत्या कर दी गयी और जिसमें तीस लोग घायल हो गये। इसका कारण आदिवासियों का अपनी ही जमीन पर खेती करना था। उम्भा की कहानी एक अनोखी नहीं है। आजादी के बाद से ही समूचे भारत में आदिवासियों के जमीनों का अवैध हस्तान्तरण दानार्थ समाज (चैरिटेबल सोसाइटी) में हुआ। धीरे धीरे इस भूमि का अधिकांश हिस्सा निजी व्यक्तियों के हाथों में आ गया, जो कि ऐसे धर्मार्थ समाज के करीबी थे।[7]

डॉ. अम्बेडकर बाम्बे लेजिस्लेटिव असेम्बली में ग्राम पंचयत बिल पर अपना पक्ष रखते हुए, जिन समास्याओं का जिक्र किया था उनमें से यह भी था कि यदि उपेक्षित वर्गों का कोई सदस्य जमीन का टुकड़ा रखता है तो वह रूढ़वादियों के समूहों से शिकार हो सकता है। उम्भा में ऐसा ही हुआ है जिसका जिक्र अम्बेडकर कर रहे थे। जिसे रोकने के लिए विशेष प्रावधानों के साथ विशेष अभियानों को अमल में लाया जाना चाहिए।

लोकतंत्र और सामाजिक न्याय

भारत में 15 अगस्त 1947 को लालकिले की प्राचीर से लोकतंत्र का आगाज किया गया। लेकिन अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों पर इसका कितना असर हो पाया यह प्रश्न विचारणीय है। लोकतंत्र में सामूहिक निर्णय के मूल्य निहित होते है। ऐसा होने पर लोग खुलकर अपने विकल्पों का चयन कर पाते हैं। लोकतंत्र तभी प्रभावी हो सकता है। जब उन असमानताओं और भेदभावों को समाप्त करने का प्रयास करे जो सामूहिक निर्णय–निर्माण करने में हस्तक्षेप करने की उनकी क्षमता क्षीण करते है। क्यों कि कानून के सामने समानता में अरबपति व्यक्ति और एक साधन–विहीन व्यक्ति को बराबर नहीं बनाती है तथा सामाजिक आर्थिक समानता होने पर ही लोकतंत्र प्रभावी तरीके से कार्य कर सकता है। विचार विमर्श की प्रक्रिया में भी लोकतंत्र की आवश्यकता होती है। लोकतंत्र विशिष्ट संस्थानों के संकलन से अधिक है, जैसे मतदान और निर्वाचन ये संस्थाए भी जरूरी है, लेकिन एक बड़ी संलग्नता के जुड़ाव के रूप में इसमें संवाद संसूचना की स्वतंत्रता और बेरोक–टोक विचार विमर्श समाहित है।[8] इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 330 व अनुच्छेद 332 में क्रमशः लोकसभा व राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधियों के लिए सीटे आराक्षित कर दी गयी है। ताकि देश के विचार विमर्श के सबसे बड़े केन्द्र संसद में अपने वर्गों के लिए संवाद स्थापित करे और मात्र दिखावे की सहभागिता न हो।

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय की नीतियों और प्रावधानों को सही साबित करने के संदर्भ में अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति लिंडन बी जानसन का कथन औचित्यपूर्ण है। जानसन ने अवसर की समानता के मजबूत संस्कारण का पक्ष लिया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि काले लोगो के लिए औपचारिक कानूनी समानता की नीति नकाफी है। उन्होंने कहा कि ''एक ऐसे व्यक्ति के बारे में विचार कीजिए जिसे कई सालो जंजीरों में बांधकर रखा गया है। आप उस व्यक्ति को जंजीरों से मुक्त

कर देते है। इसके बाद उसे दौड़ की प्रतियोगिता में ले जाकर उसे कहते है कि तुम दूसरे से प्रतियोगिता करने के लिए आजाद हो। ऐसा करने के बाद आप यह मानते है कि आपने बहुत निष्पक्ष तरीके से काम किया है। दरअसल सिर्फ अवसरों का दरवाजा खोल देना पर्याप्त नहीं है। हमें सब को समान अवसर देने के तर्क को ज्यादा मजबूती से तैयार करने की जरूरत है, हमे इस तरह का उपाय अपनाने की जरूरत है। जिससे सभी नागरिक उस दरवाजे से निकलकर स्वाभाविक रूप से चल पाये। सबसे कमजोर स्थितियों वाले व्यक्तियों को अवसरों के मुहाने तक ले जाने में समर्थ बनाने के लिए समान अवसर के संदर्भ को ज्यादा मजबूत सूत्रीकरण करने की जरूरत है। वंचित वर्ग की वर्तमान असहनीय स्थिति के पीछे बहिष्करण और सदियों से कायम अमानवीय स्थिति जैसे ऐतिहासिक कारक भी जिम्मेदार है।[9]

सन्दर्भ सूचीं

1. आचार्य अशोक (2011), सकारात्मक कार्रवाई, राजनीतिक सिद्वान्तः एक परिचय, डार्लिंग किन्डरस्ले, (इण्डिया), प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. क्र 298
2. बर्क पी. (2006), डिस्एडवान्टेज एण्ड स्टिगमाः ए थ्योरेटिकल फ्रेमवर्क फार एसोसिएषन कंडीषन, इन जे. एण्ड पी. बर्क (एडिषन) सोषल वर्क एण्ड डिसएडवान्टेज, जेसिका किन्गास्ले पब्लिषर, पृ. क्र 11–29
3. वाट्स एल.एण्ड एडसन डी., (2019),सोषल जस्टिस थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस फार सोषल वर्क, स्प्रिंगर नेचर सिंगापुर, पीटीई लिमिटेड, पृ. क्र 293
4. गुहा रामचन्द्र (2011), दलित एवं अल्पसंख्यक, भारत गाँधी के बाद, पेंगुइन रैंडम हाउस इण्डिया, प्रा.लि. गुड़गांव हरियाणा, पृ. क्र. 465
5. डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, डॉ. अम्बेडकर फाउंडेषन, नई दिल्ली, वोल्यूम न. 2, पृ. क्र. 465
6. त्रिवेदी दिव्या, सोनभद्र नरसंहार, फ्रन्टलाइन, द हिन्दू डाट काम, सोषल इष्यू, 16 अगस्त 2019
7. सेन अमृत्य, (2011), पीस एण्ड डेमोक्रेटिक सोसायटी, कैम्ब्रिज, यू. के. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. क्र.2
8. Chaudhari NP, Baudh M. the education and politics of humanity: an analytical study of the earth charter International Journal of Multidisciplinary Research Review,2019:5(6):4-13.
9. चौधरी, नारायण प्रसाद (2019) प्राचीन भारतीय शिक्षा की एक रूपरेखा में सामाजिक राजनीतिक दर्शन संदर्भ, नई दिल्ली : सिटी पब्लीकेशन पृ. क्र. 145 वहीं 188।